B.A. III (Hons)
Paper. ~~VI~~ Topic - Religious Language

Question. धार्मिक भाषा का स्वरूप और लक्षण की विवेचना?

Ans — धार्मिक भाषा के स्वरूप की व्याख्या, विचार की एक महत्वपूर्ण समस्या है। धर्म और ईश्वर मीमांसा की तार्किक प्रत्यक्षवादियों द्वारा स्थापित निरर्थकता ने इस समस्या को और अधिक व्याख्यायित करने के लिए बाध्य कर दिया है। तार्किक प्रत्यक्षवादियों ने अपने तर्कों के बल पर धर्म और ईश्वर मीमांसा की तथाकथित निरर्थकता को प्रमाणित करने के साथ ही साथ संज्ञानात्मक सार्थकता है कि धार्मिक वचनों के सम्बन्ध में इस बात पर बल दिया जा की बात नहीं की जा सकती है क्योंकि ये प्रकथन न तो विश्लेषणात्मक प्रकथन की कोटि में और न ही संश्लेषणात्मक प्रकथन की कोटि में; अतः यहाँ संज्ञानात्मक सार्थकता का अभाव होता है। साधारणतः धार्मी भावनाओं अथवा ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति के लिए हम भाषा के अन्तर्गत प्रकथनों को अपना माध्यम बनाते हैं और यही प्रकथन इस भाषा के स्वरूप का निर्धारण करते हैं।

अब एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या धार्मिक भाषा संज्ञानात्मक या तथ्य परक है? इस प्रश्न के उत्तर में धार्मिक भाषा का स्पष्टिकरण निहित है। प्रचलित धार्मिक भाषा को तथ्यपरक ज्ञान के वर्ग में रखा जाए या नहीं यह विचारणीय प्रश्न है। धार्मिक भाषा के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त प्रचलित हैं —

(1) संज्ञानात्मक (2) असंज्ञानात्मक (3) अर्द्धसंज्ञानात्मक

(1) संज्ञानात्मक - इस सिद्धान्त के समर्थक हिक तथा फ्लेमी हैं। हिक के अनुसार धार्मिक कथन तथ्यात्मक होते हैं। ये ईश्वरीय ज्ञान को आत्मा परक मानते हैं तथा आत्मा को संज्ञानात्मक ज्ञान के अन्तर्गत रखते हैं। आत्मजन्य ज्ञान की व्याख्या भी प्रत्यक्ष या

Scanned with CamScanner

नैतिक ज्ञान की चर्चा के तरह की जा सकती है हिक के अनुसार मानव को विश्व की ईश्वरवादी या अनीश्वरवादी व्याख्या करने की संज्ञानात्मक स्वतंत्रता है। जो ईश्वर प्रयत्न है वास्तविक ईश्वरीय ज्ञान वही है जहाँ मानव अपनी स्वतंत्रता इच्छा से ईश्वरीय उपस्थिति का बोध करे अर्थात उसके प्रति आत्मार्पण करें। ईश्वर एक स्वतंत्र और असीम सत्ता है जिसका बोध मानव को होता है।

हिक के अनुसार जब हम ईश्वर को सर्वशक्तिमान दयालु सर्वज्ञ कहते हैं हम ईश्वर और उसके गुणों का तथ्यात्मक विवरण करते हैं, क्योंकि यह भावना पर केन्द्रित है। इस मत की पुष्टि हेतु हिक मरणोत्तर सत्यापन सिद्धान्त का सहारा लेते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वरीय वास्तविकता को निश्चित रूप से प्रमाणित किया जा सकता है लेकिन यह इस जीवन में संभव नहीं है। मानव ईश्वर कथन का सत्यापन मरणोत्तर अनुभव के द्वारा ही कर सकता है। इनका यह सिद्धान्त आत्मा की अमरता से जुड़ा हुआ है।

ब्रेथवेट ने भी धार्मिक ज्ञान को संज्ञानात्मक माना है। इनके अनुसार धार्मिक कथन सत्य या मिथ्या प्रमाणित किए जा सकते हैं। इन्होंने आत्मा के आधार पर आत्मा की अमरता संबंधित सिद्धान्त को स्वीकार कर मरणोत्तर जीवन के अनुभव की व्याख्या में सफलता पाई है।

(2) असंज्ञानात्मक सिद्धान्त - पश्चात वर्म दर्शन में एयर, हेयर तथा ब्रेथवेट जैसे विचारकों ने धार्मिक कथन को असंज्ञानात्मक की श्रेणी में रखा है। इस ईश्वर विज्ञान से संबंधित कथनों को अर्थहीन बताए हैं। यदि धार्मिक ज्ञान को अनुभवजन्य माना जाए तो इसे सत्यापनीय होना चाहिए। लेकिन हम जानते हैं कि ईश्वर हमारे अनुभव की सीमा से परे हैं, ऐसी स्थिति में धार्मिक ज्ञान को सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता

Scanned with CamScanner

~~नहीं कहा जा सकता है।~~ इसलिए धर्म तथ्यात्मक मानना संभव नहीं है। प्रत्यक्षानुभविक युक्ति के बल पर ईश्वरीय अस्तित्व को प्रमाणित करना सम्भव नहीं है इसलिए धार्मिक कथन संज्ञानात्मक नहीं बल्कि असंज्ञानात्मक होते हैं।

एयर ने अपने सत्यापनीयता के सिद्धान्त के बल पर रहस्यवादियों के इस दावे को खंडन किया है कि ईश्वर का साक्षात अनुभव होता है। इनके अनुसार रहस्यवादियों का यह विचार आत्मविरोधी है क्योंकि एक ओर तो वे धार्मिक ज्ञान को स्पष्ट एवं निश्चित मानते हैं तथा दूसरी ओर अनिर्वचनीय मानते हैं।

हेयर ने धार्मिक ज्ञान को अपने "स्लिप सिद्धान्त" के द्वारा असंज्ञानात्मक सिद्ध करने का प्रयास किया है क्योंकि ऐसे कथन के सम्बन्ध में सत्य अथवा मिथ्या का प्रश्न उठना तर्कसंगत नहीं है। धार्मिक कथन जीवन और जगत के संबंध में धर्मपरायण व्यक्ति के प्रतिबद्धता को ही व्यक्त करते हैं जिन्हें हेयर 'स्लिप' की संज्ञा देते हैं।

ब्रेथवेट के अनुसार धार्मिक ज्ञान यथार्थ और तथ्य परक नहीं है। इसे सिद्ध करने के लिए इन्होंने तीन प्रकार के कथनों का उल्लेख किया है, वे हैं — (1) ऐसे कथन जो विशेष अनुभवात्मक तथ्यों से सम्बन्धित है। (2) वैसे कथन जो वैज्ञानिक तथ्यों से सम्बन्धित है। (3) तर्कवाक्य और गणित से सम्बन्धित कथन।

प्रथम दो वर्गों के कथन को संज्ञानात्मक अथवा तथ्यात्मक कथन की संज्ञा दी है जबकि तीसरे कथन को विश्लेषणात्मक कथन की संज्ञा दी है। इनके अनुसार उपरोक्त तीनों वर्गों में से किसी भी वर्ग के अन्तर्गत धार्मिक कथन को नहीं रखा जा सकता इसलिए इसे असंज्ञानात्मक कहना ही उचित होगा।

Scanned with CamScanner

(3) अर्द्ध संज्ञानात्मक - इस सिद्धान्त के समर्थक एक्यूनस तथा पॉल तिलीक है। एक्यूनस ने धार्मिक ज्ञान को अस्पष्ट ज्ञान कहा है। ऐसा ज्ञान आस्था पर केन्द्रित होने के कारण अनिश्चित एवं अस्पष्ट होता है इसलिए धार्मिक ज्ञान को अर्द्धसंज्ञानात्मक के वर्ग में रखा है।

तिलीक ने प्रतीकात्मक सिद्धान्त द्वारा धार्मिक ज्ञान के स्वरूप का प्रकाश डाला है। धार्मिक ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान है धार्मिक प्रतीक जिस सत्ता की ओर संकेत करते हैं उन्हें इन प्रतीकों के अभाव में नहीं जाना सकता है और हम जानते हैं कि परम सत्ता निरपेक्ष सत्ता है। इसलिए उनका ज्ञान संभव नहीं है। ईश्वर का अस्तित्व एवं गुण संबंधी विचार अस्पष्ट ज्ञान है। ईश्वर इन कथनों का संबंध तथ्य से नहीं होने के कारण इन्हें ज्ञान अर्द्धसंज्ञानात्मक ही कहा जा सकता है

अतः स्पष्ट है कि धार्मिक भाषा के संबंध में उपरोक्त तीनों सिद्धान्त, उसके स्वरूप का चित्रण अलग-अलग ढंग से करते हैं। संज्ञानात्मक सिद्धान्त उसे तथ्यपरक स्वीकार कर इसके सत्य या असत्य होने का दावा करता है, जबकि असंज्ञानात्मक सिद्धान्त धार्मिक कथन को अर्थहीन स्वीकार करते हैं तथा इनके अनुसार धार्मिक ज्ञान तथ्यपरक नहीं है। अर्द्धसंज्ञानात्मक सिद्धान्त, धार्मिक ज्ञान को अस्पष्ट ज्ञान बताता है। जिसे सभी भी तथ्यपरक नहीं कहा जा सकता है।

Dr. Saroj Ram
Dept. of Philosophy
D.K. College, Dumraon

Scanned with CamScanner